ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक नीति का मूल्यांकन

पुष्पांजली कुमारी
पूर्व शोध छात्रा,
राजनीति विज्ञान,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा

सारांश

भारत और इंग्लैण्ड के आर्थिक हित प्रत्येक क्षेत्र में टकराते है। हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पन्ज के रूप में काम करती हैं जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु ले लेती है। फिर टेम्स के किनारे पर निचोड़ देती है। 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के भंग होने से आर्थिक व्यवस्था का भी विघटन हो गया और वह टूट गई। बहुत से राजाओं के आपसी युद्धों से आर्थिक क्रिया कलाप भंग हो गया। लूट–खसोट करने वाले भिन्न–भिन्न दल उभर आये। स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, मार्ग आरक्षित हो गये और चुंगी तथा कर की अत्यधिक मांगों के कारण व्यापार और वाणिज्य बहुत घट गए। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया तथा राजनीतिक गड़बड़ी का लाभ उठाया। भारतीय ग्राम अर्थव्यवस्था का सबसे प्रमुख पक्ष यह था कि ग्रामों में आत्मनिर्भर तथा आत्मशासी समुदाय रहते थे। भारतीय ग्राम अपने आप में एक छोटे संसार के रूप में काम करते थे। जिनका वाह्य संसार के साथ बहुत कम सम्बन्ध होता था। ग्रम अर्थव्यवस्था आत्मनिर्वाही होती थी और केवल नमक अथवा लोहे के अतिरिक्त इसकों वाह्य संसार से कुछ अधिक नहीं लेना होता था। इसकी एक अन्य विशेषता यह थी कि हस्तशिल्प तथा कृषि का आपसी समन्वय होता था। कृषक के घरों में समत काता जाता था। और ग्राम के ही जुलाहे से उसका बढ़िया कपड़ा बन जाता था। अन्य आर्थिक आवश्यकताएं, बढ़ई, सुनार, कुम्हार, तेली इत्यादि पूरा कर देते थे और उसके बदले में उन्हें उपज का कुछ भाग मिल जाता था। यह सब परम्परागत पद्धति के अनुसार चलता था। भूमि पर दबाव अधिक नहीं था क्योंकि उद्योग–धंधे बहुत थे। ग्राम की भूमि–कृषक समाज की होती थी और प्रत्येक कृषक कुटुम्ब के पास कुछ न कुछ भूमि होती थी। जनसंख्या थोड़ी थी, भूमि अधिक थी अतएव भूमि का क्रय–विक्रय अतिधक नहीं होता था अर्थात् यह बेचने योग्य पदार्थ नहीं था। कार्ल मार्क्स भूमि के इस सामाजिक स्वामित्व को एक प्रकार का भारतीय सम्यवाद (Indian Communism) मानता है। ग्राम के झग्ड़ों का न्याय इत्यादि को अथवा अन्य प्रष्नों को पंचायत हल करती थी। स्थानीय सरकार यादूर का सूबेदार 1/6 से 1/2 भाग तक कर प्राप्त करने के अतिरिक्त ग्रामीण प्रष्नों में नहीं उलझता था। राजनीतिक उथल–पुथल ग्राम समाज को विभिप्त नहीं करती थी। मार्क्स ने इस प्रकार के जीवन को ''एशिया के समाजों की अपरिवर्तनशीलता'' की संज्ञा दी है। किसी ने यह ठीक ही कहा है कि इस अस्थिर संसार में केवल यही एक स्थिर तत्व था।

मुख्य शब्द : अर्थव्यवस्था, ग्राम समाज, भारतीय हस्तशिल्प।

प्रस्तावना

ग्राम समाज के इस अलगाव की प्रकृति तथा स्थिरता का एक बुरा पक्ष भी था। इस आत्मनिर्भर समाज के कारण भारतीय हस्तशिल्प की बहुत बड़ी मण्डी नहीं बन पाई। इस बन्द तथा जाति बन्धन में जकड़े आर्थिक समाज में श्रमिक अपनी परम्परागत कार्य प्रणाली को छोड़कर इधर–उधर नहीं जा सकता था। इससे मानव मन क्लिष्ट हो जाता था और प्रयत्नशील न रहकर कोई अन्य काम करने का सहारा नहीं करता था। और आर्थिक व्यवस्था एक प्रकार से गतिहीन और निष्क्रिय बन जाती थी। इसके अतिरिक्त राजनीतिक प्रश्नों में ग्राम की उदासीनता के कारण राष्ट्र भावना का विकास भी नहीं हो सकता।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक नीति का मूल्यांकन का अध्ययन करना है।

नागरिक अर्थव्यवस्था का चित्र अधिक सुन्दर था क्योंकि भारतीय हस्तशिल्प सारे संसार में विदिता था। बंगाल और ढाका, गुजरात, अहमदाबाद और मछली पटनम के सूती कपड़े, मुर्शिदाबाद, लाहौर और आगरा के रेषमी

कपड़े, कषमीर, लाहौर, आगरा की गर्म मशालें और गलीचों की भारत तथा विदेश में बहुत मांग होती थीं सोना, चांदी तथा अन्य धातुओं के बने आभूषण, बर्तन, हाथी दांत की बनी सुन्दर वस्तुएं, शस्त्र, ढाल, जलपोत सभी बहुत प्रसिद्ध थे। भारत ने अपनी एक बैंक प्रणाली भी विकसित कर ली थी जिसमें निम्न स्तर पर सर्राफ तााि महाजन और उत्तम स्तर पर चेट्टी, नगर सेठ तथा जगत सेठ थे। व्यापार का संतुलन भी हमारे पक्ष में था और भारत सोने तथा चांदी का घर कहा जाता था। ऐसा लगता है कि भारत में पूंजीवाद के सभी तत्व विद्यमान थे परन्तु समाज की अर्थव्यवस्था के सामाजिक बन्धन और राजगामी संपत्ति अधिनियम (Law of Escheat) तथा सामन्तवादी वर्गों का अस्तित्व इसके रास्ते में आड़े आया। प्रो0 रे0 चौधरी ने, 18वीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का कारण वैज्ञानिक तथा भौगोलिक क्रान्ति के अभाव के लिए भारतीय समाज को दोषी ठहराया है क्योंकि उसने अवसर के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं दिखायी।[1]

1853 में मार्क्स द्वारा भारत पर लिखे गए कुछ लेखों में मार्क्स ने इंग्लैण्ड की दोहरी भूमिका का विश्लेषण किया। एक विनाशकारी और एक पुनर्जन्मात्मक। इंग्लैण्ड की पुनर्जन्मात्मक भूमिका इस बात में थी कि वह भारतीय समाज के कुछ प्राचीन आधार को समाप्त कर रहा था जिसके बिना विकास सम्भव नहीं था। इस अर्थ में उसने अंग्रेजी शासन को आधुनिक विकास की पूर्वापेक्षा बतलाया है। परन्तु इंग्लैण्ड की स्वार्थी नीति के कारण भारत में स्वतन्त्र औद्योगिक बूर्जवा समाज तथा एक अच्छी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था नहीं पनप सकी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भूमि अधिग्रहण की पद्धतियॉ बदल दीं। स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवाड़ी तथा महलवाड़ी पद्धतियों का जो रूप ईस्ट इंडिया कम्पनी ने गठित किया वह कुछ विकृत ही नहीं था बल्कि भूमि पर इतना बोझल था कि कृषक को भर पेट रोटी भी नहीं मिलती थी और वह स्थानीय साहूकार के ऋण के नीचे दबा रहता था।

अंग्रेजों ने भारतीय जुलाहों को इतना कम मूल्या देना आरम्भ कर दिया कि उन्होंने बढ़िया कपड़ा ही बनाना बन्द कर दिया। कुटीर उद्योगों के ह्रास में अंग्रेजी औद्योगिक क्रान्ति की मुख्य भूमिका थीं मशीन का माल सस्ता और बढ़िया होता था, अतएव कुटीर धन्धें ठप्प हो गये।

जब से भारत ह्रास बना था उसके समस्त व्यापार का नियन्त्रण इंग्लैण्ड के हित में होता था। आयात तथा निर्यात करों को इंग्लैण्ड के हित में घटााया या बढ़ाया जाता था। इंग्लैण्ड से आने वाले माल पर आयात कर कम और इंग्लैण्ड से इतर देशों के माल पर आयत कर दुगना।

यही परिस्थिति निर्यात की थी अर्थात् लाभ केवल इंग्लैण्ड को ही होता था भारतीय उत्पादकों अथवा उपभाक्ताओं को नहीं।

श्री आर0 पी0 दत्त जो एक मार्क्सवादी तर्कशास्त्री और विद्वान है, ने भारत में साम्राज्यवादी काल को तीन भागों में बांटा है–

1. वणिकवाद का काल–1757 से 18वीं शताब्दी में विकसित हुआ।
2. स्वतंत्र व्यापारिक पूंजीवाद का काल 19वीं शताब्दी में विकसित हुआ।
3. वित्त पूंजीवाद का काल–19वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों से 1947 तक।

दत्त महोदय ने ठीक ही कहा है कि प्रत्येक चरण अपने से पूर्व की परिस्थितियों के कारण विकसित हुआ और साम्राज्यवादी शोषण की भिन्न–भिन्न पद्धतियॉ प्रायः एक–दूसरे पर आच्छादित हो जाती थीं जिससे कि शोषण की पहली प्रणाली समाप्त होने से पहले ही वह शोषण के नये ढांचे में ढल जाती थी।

कम्पनी के अन्तिम दिनों मे भारतीष्य अर्थव्यवस्था केवल 'एक बस्ती की अर्थव्यवस्था ही बनकर रह गई। भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंग्रेजी फनदा दिन प्रतिदिन अधिक कड़ा ही बनता चला गया।

1757 से जब अंग्रेजों ने प्लासी का युद्ध जीता, कम्पनी का बंगाल के साथ व्यापार तथा लूट के एक विशेष युग का आरम्भ हुआ। यह वणिकवाद का युग था। वणिकवाद जो 16वीं से 18वीं शताब्दी तक बहुत लोकप्रिय था, प्राचीन साम्राज्यवादी प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग था। वास्तव में यह आक्रामक राष्ट्रवाद (Aggressive Nationalism) का आर्थिक प्रतिकार था। इसका मूलभूत आधार यह था कि समस्त आथ्रिक कार्यविधि को राष्ट्र के हित में तथा शक्तिशाली बनाने के लिए नियमित किया जाना चाहिए। जहॉ तक विदेशी व्यापार का सम्बन्ध था, इसका अर्थ यह था कि राजपत्रित व्यापारिक कम्पनियों द्वारा इसका नियमन किया जाए ताकि आयात से अधिक निर्यात किया जाए अर्थात् संतुलन देश के हित में हो और दूसरे मातृभूमि के अन्दर सोना, चांदी अधिकाधिक आयें।

व्यापरिक कम्पनियॉ यह उद्देश्य तीन तरीकों से प्राप्त करती थी।–

1. व्यापार पर एकाधिकार हो और सभी सम्भव प्रतिद्वन्दी समाप्त कर दिये जायें।
2. वस्तुएं कम–से–कम मूल्य पर खरीदी जायें और अधिकाधिक मूल्य पर बेची जायें।
3. ऊपर लिखित उद्देश्य तभी प्राप्त हो सकते थे। यदि व्यापार किये जाने वाले देश पर राजनीतिक नियन्त्रण हो।

अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्य व्यापारी कम्पनियों से अर्थात् डच कम्पनी (Dutch Company) तथा फ्रांसीसी कम्पनी से झगड़े का मूल उद्देश्य यह था कि प्रतिद्वन्दी भारतीय व्यापार से बाहर कर दिये जायें। भारत में जो युद्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय राजाओं से लड़े, जैसे बंगाल की विजय, आंग्ल–मैसूर युद्ध, आंग्ल–मराठा युद्ध तथा अन्य भारतीय शक्तियों नौरोजी ने 'नैतिक विकास'' की ओर भी संकेत किया है, जिससे तात्पर्य यह था कि भारतीय लोगों को उनके देश में भी विश्वास तथा उत्तरदायी पदों से बाहर रखा जाता है। उन्होंने लिखा, ''आत्मा तथा बुद्धि का चातुर्य और श्रेष्ठता जो प्रकृति सभी देशों को देती है, भारत का तीन रूप से ह्रास हो रहा है।''

हाल ही में कुछ विद्वान ने इस विकास सिद्धान्त की कुछ परिकल्पनाओं पर प्रश्न उठाया है। रानाडे ने भारत के आर्थिक पिछड़ेपन के समाजशास्त्रीय कारण दिये थे, उन्हें फिर दोहराया गया है। मॉरिस डी0 मॉरिस (MorrisD.Morris) ने 'गर्भावधि' (Gestation) सिद्धान्त पर अधिक बल दिया है और कहा है कि इंग्लैण्ड की भूमिका ने एक ''चौकीदार'' का आरक्षण दिया, तक तर्कसंगत प्रशासन दिया और एक प्रकार की सामाजिक छत्र–छाया दी जिसके आधार पर आर्थिक विकास के होने की सम्भावना थी भारतीय विद्वानों ने विदेशी पूँजी के दुरूपयोग (Malutilisation)और कम उपयोग (Under-Utilisation) की ओर संकेत किया है और यह दर्शाया है कि साम्राज्यीय प्रशासन जानबूझकर देश के कम विकास की ओर ले जा रहा था।

आज ऐतिहासिक दृष्टि से हम कह सकते है कि धन की निकास सिद्धांत ने एक ऐसी भाषा में जा साधारण व्यक्ति की भाशा में समझ आ सकती थी, अंग्रेजी शासन ने शोषक तत्वों की ओर ध्यान दिलाया। स्वतन्त्रता युद्ध के दिनों में धन के विकास का सिद्धान्त अंग्रेजों के भारत में अंग्रेजी प्रशासन को बदनाम करने के लिए एक सरल सा नारा बन गया।

1800 ई0 तक भारतीय उद्योग–धन्धे संसार देश ने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विदेशों में औद्योगिककरण होने लगा और उत्पादन बढ़ने लगा। भारत में औद्योगिक पतन हुआ और शनैः–शनैः उत्पादन कम और अधिक कम होता चला गया। इस युग को, 1800–50 तक, हम अनौद्योगीकरण का काल कह सकते है। भारत के परम्परागत हस्तशिल्प उद्योग का ऐसा ह्रास हुआ कि वह मर गया। यह वहीं काल था जब इंग्लैण्ड का नियन्त्रण सुदृढ़ होता जा रहा था। मॉरिस डी0 मॉरिस तथा डी0 तथा ए0 थारनर जैसे विदेशी विद्वान इस पक्ष पर बल देते कीाी नहीं थकते कि हस्तशिल्प उद्योगों का ह्रास औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप अपरिहार्य ही था और ययह समस्त संसार में देखने को मिलता है। भारत की इस विशेष स्थिति–जो कि यूरोपीय तथा उत्तरी–अमेरिका से पूर्णतया भिन्न थी–का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है।–

1. 19वीं शताब्दी में भारतीय हस्तशिल्प का अत्यधिक ह्रास हुआ, एक स्थिति जो 20वीं शताब्दी में भी चलती रही।
2. यूरोप में हस्तशिल्प का ह्रास इएलिए हुआ कि वहां पर उसके बदले कारखानों का विकास हुआ और उत्पादन बढ़ा जबकि भारत में यह ह्रास इसलिए हुआ कि अंग्रेज उद्योगपति अपना माल भारत में मनमाने भाव से बेचकर देश का धन्धा ठप्प कर सकते थे और अपने लिए अधिक धन कमा सकते थे।

इन दोनों कारणों के फलस्परूप भारतीय जनसंख्या तथा उद्योगों में काम कर रही जनसंख्या का अनुपात तथा संख्या कम होती चली गई।

19वीं शताब्दी औद्योगिक पूँजी का काल था अर्थात् इस युग में उभरते हुए अंग्रेज उद्योगपतियों तथा व्यापारियों ने आक्रामक रूख अपनाया जिसका आधार था 'स्वतन्त्र व्यापार'।

उनके लगातार प्रचार तथा संसद सदस्यों के प्रभाव के कारण 1813 के चर्टर ऐक्ट के द्वारा भारतीय व्यापार पर एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। अब भारतीय व्यापार का स्वरूप बदल गया। अब तक भारत मुख्य रूप से नियात करनेवाला देश था परन्तु अब से आगे यह आयात करने वाला देश बन गया। बढ़िया अंग्रेजी सूती काल की भारतीय मझिडयों में बाढ़ आ गयी और देश का बुनकर उद्योग ठप्प हो गया। लार्ड विलियम बैंटिंक की सरकार ने भी 1834 में यह कहा था, ''इस दुर्दशा का व्लापार के इतिहास में जोड़ नहीं । भारतीय बुनकरों की हड्डियॉ भारत के मैदानों में बिखरी पड़ी हैं।'' कार्ल मार्क्स ने जो एक अत्यन्त दूरदर्शी प्रक्षेक था, यह कहा, ''यह अंग्रेज घुसपैठिया था जिसने भारतीय खड्डी और चरखे को तोड़ दिया। पहले इंग्लैण्ड ने भारतीय सूती माल की बाढ़ ला दी।'' डॉ0 डी0 आर0 गाडलिंग4 ने भारतीय हस्तशिल्प के ह्रास के तीन मुख्य कारण बताये हैं।–

1. भारतीय राजा बढ़िया हस्तशिल्प को संरक्षण देते थे और प्रायः उत्तम शिल्पियों को वेतन देकर अपने यहॉ काम में लगाये रखते थे, उनका सर्वनाश हो गया।
2. विदेशी प्रशासन की स्थापना के फलस्वरूप भारत के समाज में एक परिवर्तन आया। भारत में यूरोपीय पदाधिकारियों तथा शिक्षित वर्ग ने नया रूख अपनाया। वे विदेशी रहन–सहन अपनाने लगे और विदेशी उद्योगों को संरक्षण देने लगे। सभी भारतीय पक्षों, वस्त्र, पहनावा, रहन–सहन को हेय दृष्टि से देखने लगे।
3. अत्यधिक विकसित मशीनी माल का मुलाबला भारतीय उद्योग नहीं कर सकता था। उसे तो संरक्षण की आवश्यकता थी न कि खुले व्यापार से माने जाने की।

एक अन्य लेखक मेजर बी0 डी0 बसु ने इंग्लैण्ड द्वारा भारतीय शिल्प को हनन के लिए राजनीतिक शक्ति के प्रयोग की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है।5 उसके अनुसार ये ढां निम्नलिखित थे– (1) भारत पर मुक्त व्यापार प्रणाली का थोपना 2. भारतीय निर्माताओं के माल पर इंग्लैण्ड में आयात करने पर अत्यधिक शुल्क 3. भारत से कच्चे माल का निर्यात 4. भारतीय माल पर आते–जाते समय कर 5. विदेशी निर्माताओं का उद्योग लगाने के लिए विशेष सुविधाएं हाल ही मे कुछ विदेषी विद्वानों जैसा कि मारिस डी0 मारिस ने साम्राज्यीय शोषक अभिधारण को चुनौती दी है जिसकों कि भारतीय राष्ट्रीय लेखकों तथा उद्घोषकों ने सुझााया6 था और उसके बदले में यह कहा कि साम्राज्यीय शासन से ''सम्भवतः उन आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला जैसा कि भारत में इससे पहले कभी सम्भव नहीं हुआ था।''[7] और यह कहा है कि बुनकरों की संख्या जितनी इस युग के आरम्भ होने से पहले थी उससे कभी कम न थी और न ही वे आर्थिक रूप से अधिक बुरी अवस्था तें थे। सम्भवतः कुछ सकारात्मक विकास हुआ ही है।[8] ए0 तथ डी0 थोरनर ने 1881 की जनगणना से लिए हुए आंकड़ों के आधार पर 1931 के आंकड़ों से उनकी तुलना की है और यह कहा है कि कृशि और उत्पादन के क्षेत्रों में लगे हुए श्रमिकों की

प्रतिशत दर में कोई अन्तर नहीं आया।9 परन्तु ये वही भी मानते हैं कि उद्योग से कृषि की ओर मुख्य विकास 1815 और 1880 के बीच हुआ।[10]

उदारवादी, अतिवादी तथा गांधीवादी सभी राष्ट्रवादी लेखकों के विचारों में जिस बात पर बार–बार बल दिया जाता था, वह यह थी कि अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के उस पक्ष का विकास किया जैसा कि रेलवे समुद्री गाड़ियॉ तथा सिंचाई परियोजनाएं. जो इंग्लैण्ड के औद्योगिक हितों के अधीन, या उनके लिए हितकर था और उन आधुनिक उद्योगों की अनदेखी कर दी अथवा उनके आड़े आये जो भारत के हित में थे। हमारे समस्त राष्ट्रीय आन्दोलन में अनौद्योगिकरण का नारा लगाया जाता रहा और साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए इस ओर ध्यान आकर्षित किया जाता रहा है। 6.भारतीय शिल्पियों को अपने रहस्य देने पर बाध्य करना 7. व्यापार मेंलों तथा प्रदर्शनियों का लगाना, 8. रेल मार्गों का विकास।

भारतीय हस्त शिल्प का ह्रास सारी 19वीं शताब्दी में चलता रहा और 20वीं शताब्दी के मध्य तकं । परन्तु यह भारतीय शिल्प की महत्ता है कि इन अनगिनत विषमताओं के होते हुए भी इसने अपने आपकों जीवित रखा। ग्रामीण जनता, जोकि प्रायः बहुत निर्धन होती थी, ने अधिक सस्ते खादी कपड़े को अपनाये रखा और ग्राम में बने लोहे तथा लकड़ी के बने कृषक उपकराणों का प्रयोग जारी रखा। 20वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों से स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप इन स्थानीय उद्योगों को थोड़ा बहुत संरक्षण करना आरम्भ हुआ और खादी तााि ग्राम उद्योगों के लिए नगरों में दुकाने खुली। गांधी युग में ग्राम उद्योंगों को और प्रोत्साहन मिला, तथा भारतीय हस्तशिल्प को जीवित रखने में सहायता मिली।

निष्कर्ष

पूॅजीवाद और मशीनी उद्योग बढ़ने से भारतीय उद्योगों को बहुत अधिक हानि पहुंची क्योंकि भारतीय उद्योग मशीन का मुकाबला नहीं कर सकते थे। यद्याप प्रथम विष्व युद्ध में ाारतीय उद्योग को विकसित होने का अवसर मिला परन्तु हम देखते हैं कि अनौद्योगीकरण चलता रहा और भारत में उद्योग में लगे श्रमिकों की संख्या तथा प्रतिशत दर दोनों में कमी आयी और उधर कृषि कार्यों में लगे श्रमिकों की संख्या बढ़ी। कॉलेन क्लार्क के अनुसार, ''1881 और 1911 के बीच उत्पादन, खनिज तथा निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों की प्रतिशत दर 35 प्रतिशत घटकर 17 प्रतिशत अर्थात् आधी रह गई।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ए. गरसेशन्क्रोन, 'सोशल ऐट्टीच्यूट्स एन्टरप्रेन्योरशिप एण्ड इकोनोमिक डेवलपमेंट,*
2. *बी0पी0 भट्ट एस्पेक्ट्स ऑफ इकोनोमिक चेंज एण्ड पॉलिसी इन इंडिया, 1860–1960 में उद्धृत, पृष्ठ 36।*
3. *कुजनेत्स, मर और स्पेंगलर 'लाग टर्म ट्रेंडस इन आउटपुट इन इंडिया' ओक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृष्ठ 284।*
4. *'द फिस्कल कमीशन रिपोर्ट', वाडिया और मर्चेंट, पृष्ठ 598 से उद्घृत।*
5. *डी0 एच0 बुकानन, पृष्ठ 468 पर 'जर्नल ऑफ द सोसायटी ऑफ आर्टस्', खंड 'एल' से उद्धृत।*
6. *ए0 ज0 कोल और ई0 एम0 हूवर 'द पापुलेषल ग्रोथ एंड इकोनोमिक डेवलपमेंट इन लो इन्कम कन्ट्रीज' पृष्ठ 55–56।*
7. *वी0वी0 सिंह द्वारा सम्पादित उपर्युक्त पुस्तक में बी0एम0 भाटिया कृत, 'कृषि और सहकारिता, 1857–1956' लेख, पृष्ठ 83–85।*
8. *एम0एल0 डालिंग, 'द पंजाब पेजेंट इन प्रास्पैरिटी एंड डेट' जॉनी एण्ड जॉनी पब्लिकेशन, लंदन, पृष्ठ 135–37।*
9. *नानावती और अन्जारिया, 'द इंडियन रूरल प्राब्लम', लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 32–36।*
10. *रजनी पाम दत्त, 'इंडिया टुडे', पृष्ठ 36–53।*